Introduction

"हिन्दी साहित्य को गुजरात के सन्त-कवियों की देन"

विषय प्रवेश :

१. सामग्री-संकलन के सूत्र :

गुजरात की ज्ञानमार्गी-परम्परा का अध्ययन करने के लिए उपलब्ध सामग्री को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :-

:अ: सन्तवाणी-संग्रह : प्रकाशित एवं अप्रकाशित :
:ब: आलोचनात्मक सामग्री : प्रकाशित एवं अप्रकाशित :

:अ: सन्तवाणी संग्रह :

गुजराती सन्तों की वाणी अधिकांशत: अभी अज्ञात एवं अप्रकाशित है । कुछ संग्रह जो गुजराती लिपि में प्रकाशित हुए हैं उनमें भी कुछको छोड़कर शेष अप्रामाणिक एवं साधारण स्तर के हैं । फिरभी, बृहद-काव्य-दोहन : आठ भाग :, प्राचीन-काव्य-माला : छत्तीस भाग :, भजन-सागर : भाग १,२ :, अध्यात्म भजनमाला : भाग १,२ : तथा सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय द्वारा प्रकाशित विभिन्न सन्तों की बानियाँ प्रकाशित सामग्री-संकलन के अन्तर्गत प्रस्तुत आलोचना के विश्वसनीय आधार स्तम्भ रहे हैं । गुजरात के सन्तों की समस्त हिन्दी-वाणी भी गुजराती पदों के बीच-बीच ही उपलब्ध होती है । अत: स्वतन्त्र रूपेण उनकी समग्र हिन्दी वाणी के संग्रह एवं सम्पादन की भी आवश्यकता है । इस दृष्टि से यत्किंचित प्रयत्न हुए अवश्य हैं, लेकिन ये प्रयत्न विशाल अम्बर से दो चार तारे बटोरने के समान ही हैं । कहानजी धर्मसिंह द्वारा संपादित `अध्यात्म भजनमाला` : भाग १, २: में गुजरात तथा उत्तरभारत के प्रसिद्ध सन्तों की बानियाँ संग्रहीत हैं । इन दोनों भागों में प्राचीन तथा अर्वाचीन युग के लगभग १७५ भक्त कवियों द्वारा रचित १३०० पद संग्रहीत हैं । इनमें गुजराती सन्तों द्वारा रचित उनके हिन्दी पदों को विशेष रूप

से समाविष्ट किया गया है । गुजराती सन्तों की बानी के प्रकाशन में सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय : अहमदाबाद तथा बम्बई, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी : अहमदाबाद :, 'गुजराती' प्रिंटिंग प्रेस : बम्बई :, फार्बस गुजराती सभा : बम्बई : तथा म.स.विश्व विद्यालय : बड़ौदा : आदि संस्थाओं का विशिष्ट योगदान रहा है ।

अप्रकाशित संतवाणी प्राय: तीन स्थानों पर उपलब्ध होती है :—

१. <u>विभिन्न पुस्तकालयों एवं प्रकाशन संस्थाओं में :</u>

विशेषत: भो.जे.विद्याभवन : अहमदाबाद :, डाह्यीलक्ष्मी पुस्तकालय : नडियाद : तथा प्राच्य विद्यामन्दिर : बड़ौदा :

२. <u>विभिन्न मन्दिरों तथा साम्प्रदायिक पीठों में :</u>

गुजरात के सन्तों की अप्रकाशित बानियाँ इस क्षेत्र के विभिन्न मन्दिरों तथा साम्प्रदायिक पीठों में सुरक्षित हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए अनिवार्यत: अनुसन्धित्सु को उन विभिन्न स्थानों पर घूम-घूम कर सामग्री का संकलन करना पड़ा है । कबीर मन्दिर एवं निरांत मन्दिर : बड़ौदा :, भरोडा : जि. खेडा :, वडताल : आनन्द:, सारसा : आनन्द :, सन्तराम मन्दिर : नडियाद :, ओड : जि. खेडा :, टंकारा : मोरबी-सौराष्ट्र :, सावली : बड़ौदा :, अमरेली : सौराष्ट्र : तथा शेरखी : बाजवा-बड़ौदा : आदि स्थानों से सामग्री संकलित की गयी है ।

३. <u>व्यक्ति-विशेष के पास :</u>

लेखक का सम्पर्क इस विषय के अध्येताओं से भी रहा है ।

इस रूप में उनके अपूर्व सुझावों के साथ साथ उनके दवारा संग्रहीत वाणियों का उपयोग भी छूट से हो सका है । आचार्य प्रवरकुंवर चंद्रप्रकाशसिंह, डॉ.अम्बाशंकर नागर, डॉ.सुरेश जोशी, डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी, डॉ.मंजुलाल मजमुदार, डॉ.गोवर्धन शर्मा तथा मित्रवर रमणभाई पाठक का लेखक विशेषरूप से आभारी है । कच्छ तथा सौराष्ट्र के सन्तों पर श्री.दूलेराय काराणी और सूरत के सन्तों पर श्री माणेकलाल शंकरलाल राणा की एकत्रित सामग्री का भी लेखक ने साभार उपयोग किया है ।

:ब: आलोचनात्मक सामग्री :

गुजरात की ज्ञानाश्रयी धारा के विशिष्ट अध्येताओं में दी.ब. कृष्णलाल झवेरी, श्री.गोवर्धनराम त्रिपाठी, श्री.नरसिंहराव दिवेटिया, डॉ.कन्हैयालाल मुन्शी, श्री.विजयराय वैद्य, आचार्य अनन्तराय [redacted] रावल, डॉ.भोगीलाल सांडेसरा, श्री.उमाशंकर जोशी, श्री.विष्णुप्रसाद दिववेदी, डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी, श्री.केशवलाल ठक्कर, डॉ.सुरेश जोशी, डॉ.कुंवर चंद्रप्रकाशसिंह, डॉ.अम्बाशंकर नागर तथा श्री.के.का.शास्त्री आदि प्रमुख हैं । जहाँ तक गुजरात के सन्तों की हिन्दी-वाणी की विवेचना का सम्बन्ध है, इन वरेण्य विवेचकों की प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार की उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने का सुअवसर लेखक को मिला है ।

२. एतद् विषयक शोध-कार्य का विहंगावलोकन :

इस दिशा में अबतक किये गये शोध कार्य को हम दो रूपों में देख सकते हैं :-:१: गवेषणात्मक शोध-कार्य । :२: तुलनात्मक शोध-कार्य ।

:अ: गवेषणात्मक शोध कार्य :—

गुजरात के सन्त कवियों की हिन्दी वाणी का प्रारम्भिक अध्ययन प्राय: गवेषणात्मक ही है । श्री डाह्याभाई देरासरी द्वारा लिखित 'गुजरातीओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो'।[१] लघु निबन्ध में निम्नलिखित सन्तों का परिचयात्मक उल्लेख मिलता है : मीरांबाई, दादूदयालजी, धोन, वेदान्ती कवि अखो, महेराज, त्रिविक्रमानंद, मनोहरस्वामी, खुमानबाई, महर्षि दयानंद सरस्वती ।

गवेषणा की दृष्टि से इस दिशा में पुस्तकाकार यह पहला प्रयत्न है । फार्बस गुजराती सभा, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'महोत्सव ग्रन्थ' के लेख विशेष में जिन विशिष्ट सन्तों का परिचय मिलता है वे इस प्रकार हैं[२]: फकरुद्दीन, भाण, माधवदास, संत मयूरदास, मोमाराम और देवी तुलजा, मेहराज, रविसाहब ।

इसमें मेहराज के गुरु देवचन्द्र को राधास्वामी सम्प्रदाय का प्रवर्तक बताया गया है[३]; जो एक भ्रामक कथन है । स्वामी देवचन्द्र वस्तुत: 'प्रणामी सम्प्रदाय' के प्रवर्तक थे ।[४]

गुजरात के हिन्दी सेवी कवियों की परिचयात्मक लेख माला में कुछ प्रमुख रचनाएँ और भी हैं :—

:१: श्री.जगजीवन क.मोदी 'गुजरातनुं हिन्दी साहित्य', सन् १९२१
:२: श्री.भवानीशंकर याज्ञिक, 'गुजरात के हिन्दी कवि' : सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक, पृ.५८५ से ९२ :
:३: श्री.जनक दवे, 'सुरत अने हिन्दी' : 'शिक्षण अने साहित्य' मासिक अंक जुलाई १९५१–५२ :
:४: डॉ.नटवरलाल अम्बालाल व्यास, 'गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन' : स्वीकृत शोध प्रबन्ध, १९६० ई०,आगरा विश्व विद्यालय, आगरा ।

१.गु.व.सो.द्वारा प्रकाशित सं.१९९३, पृ.६२,प्रथम संस्करण के आधार पर ।
२. महोत्सव ग्रन्थ, पृ.३१४ से ३२२ ।
३. वही पृ.३१७ ।
४.देखिए— निजानन्द चरितामृत,नवतनपुरी,जामनगर से प्रकाशित ग्रन्थ ।

एतद् सम्बन्धी उपर्युक्त गवेषणा की दिशा में डॉ.अम्बाशंकर नागर द्वारा सन् १६५७ में राजस्थान विश्व विद्यालय की पीएच.डी.उपाधि के लिए प्रस्तुत अधिनिबन्ध "गुजरात की हिन्दी सेवा" में प्राय: पहली बार गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा पर प्रकाश डालते हुए लगभग ५० छोटे मोटे सन्तों के जीवन तथा कृतित्व पर विचार किया गया है ।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने `उत्तरी भारत की सन्त परम्परा` के नवीन संस्करण में `रविभाण सम्प्रदाय` के कुछ प्रमुख सन्तों की चर्चा की है । डॉ. कुंवर चंद्रप्रकाशसिंह ने अखा की समस्त हिन्दी वाणी का सम्पादन `अक्षयरस` के रूप में प्रस्तुत कर अखा प्रणालिका के ज्ञानी कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखी हैं । इसी प्रकार डॉ.अम्बाशंकर नागर द्वारा रचित `गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ` में गुजरात की हिन्दी परम्परा का विहंगावलोकन प्रस्तुत करते हुए ज्ञानी कवि अखा और उनकी कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । सन्त साहित्य के इतिहास में इस प्रकार के सभी प्रयत्न निसन्देह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी को जोड़ते हैं । `अक्षयरस` की भाँति निरांत, धीरा, रविसाहब, प्रीतम, छोटम, वस्ता विश्वम्भर आदि सन्तों की समस्त हिन्दी बानियों के सम्पादन का क्षेत्र अभीतक अछूता ही है ।

:ब: तुलनात्मक शोध-कार्य :

गुजरात के सन्तों की हिन्दी गुजराती वाणी का तुलनात्मक अध्ययन तो और भी कम हुआ है । यद्यपि गवेषकों की दृष्टि अब इस क्षेत्र में भी चक्षुपात करने लगी है । श्री.कुंजविहारी वार्ष्णेय ने हाल ही में अपना शोध-प्रबन्ध : हिन्दी गुजराती सन्तों की ज्ञानाश्रयी धारा का तुलनात्मक अध्ययन : प्रस्तुत कर बम्बई विश्वविद्यालय से पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की है । तुलनात्मक शोध एवं समीक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धित्सुओं के लिए अभी पर्याप्त अवकाश है । उदाहरणार्थ - अखा, धीरा, भोजा, निरांत, प्रीतम, छोटम आदि उच्चकोटि के गुजराती सन्तों की तुलना समकक्ष हिन्दी सन्तों से की जा सकती है ।

३. प्रेरणा एवं महत्त्व :

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रद्धेय डॉ. अम्बाशंकर नागर के अधिनिबन्ध : गुजरात की हिन्दी सेवा : ने गवेषणा के इस पथ पर अग्रसर होनेवाले पथिकों को एक नवीन दिशा सूचित की है । लेखक का कार्य उनकी प्रेरणा से फलित होकर उन्हीं के निर्देशन मे परिपूर्ण हो रहा है । दिशासूचन की दृष्टि से आचार्य विनयमोहन शर्मा द्वारा लिखित `हिन्दी को मराठी सन्तों की देन` का भी विशिष्ट हाथ रहा है । लेखक को प्रस्तुत अधिनिबन्ध के शीर्षक की प्रेरणा भी इसी ग्रन्थ से मिली है जिसके प्रथम पृष्ठ की प्रथम पंक्ति[१] ने ही उसे इस कार्य की ओर प्रवृत्त कर दिया । प्रस्तुत शोध कार्य के द्वारा लेखक को महाराष्ट्र एवं उत्तरभारत की सन्त परम्परा की शृंखला की टूटी हुई कड़ियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनको जोड़कर देखने से गुजरात के सन्तों की वाणी भी भारत-व्यापी सन्त परम्परा की एक अविच्छेद्य कड़ी प्रतीत होती है ।

गुजराती साहित्य के विद्वानों ने इस दिशा में कुछ स्तुत्य प्रयत्न किये हैं :—

१.	अखो एक अध्ययन	श्री. उमाशंकर जोशी ।
२.	नरहरि अने ज्ञानगीता	श्री. सुरेश जोशी ।
३.	सागर जीवन अने कवन	श्री. योगीन्द्र त्रिपाठी ।
४.	मीराँ एक मनन	श्री. मंजुलाल मजमुदार ।
५.	कवि चरित	श्री. के. का. शास्त्री ।
६.	सोरठना सन्तों	श्री. झवेरचन्द मेघाणी ।
७.	कच्छना सन्तों अने कविओ	श्री. दुलेराय काराणी ।

उपर्युक्त व्यष्टिमूलक अध्ययनों में आलोचकों की दृष्टि प्राय: सन्तों की गुजराती वाणी तक ही सीमित रही है । इसी प्रकार अब तक किये गये समष्टिमूलक अध्ययनों में भी हिन्दी वाणी के प्रति उनकी उदासीनता प्रतीत होती है । यथा :—

१. `समस्त भारतवर्ष में महाराष्ट्र ही ऐसा क्षेत्र है, जहाँ अनेक सन्तों की मराठी के साथ हिन्दी रचनाएं भी उपलब्ध होती हैं ।` हि.म.स.दे., पृ.१ ।

:१: केवलाद्वैत इन गुजराती पोयट्री श्री.योगिन्द्र त्रिपाठी ।
:२: मध्यकालीन गुजराती साहित्य आ.अनंतराय रावल ।
:३: गुजराती साहित्यना स्वरूपो प्रो.मंजुलाल मजमुदार ।
:४: मध्यकालना साहित्य प्रकारो श्री.चंद्रकान्त मेहता ।

इस प्रकार के ग्रन्थ सन्त काव्य की किसी विशिष्ट धारा अथवा प्रवृत्तिका अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी वाणी की खोज तथा उसकी उपलब्धियों को प्रस्तुत करना इन अध्येताओं का प्रतिपाद्य विषय नहीं रहा। सारांशत: गुजरात की ज्ञानाश्रयी शाखा के समग्र अध्ययन की आवश्यकता अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।

४. विषय का स्पष्टीकरण एवं उसकी सीमाएँ :

गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी का अनुशीलन एवं उसकी उपलब्धियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है।

गुजरात के सन्त कवियों की हिन्दी वाणी का अध्ययन करते समय सबसे पहले निम्नलिखित बातों का स्पष्टीकरण कर लेना समीचीन होगा :

:अ: पंथ, प्रणालिका और सम्प्रदाय ।
:ब: 'सन्त' शब्द की व्याख्या ।
:क: 'गुजराती सन्त कवि' की व्याख्या ।
:ड: गुजरात, गुजराती एवं हिन्दी से — हमारा तात्पर्य ।
:इ: हिन्दी तथा गुजराती की निकटता — एवं पारस्परिक सम्बन्ध ।
:ई: काल-निर्णय ।

:अ: पंथ, प्रणालिका और सम्प्रदाय ।:

सन्तमत से हमारा अभिप्राय प्राय: कबीर आदि सन्तों की उन स्वीकृतियों से है जिनका प्रचार लगभग पाँच छ:सौ वर्ष पहले

हुआ था, किन्तु जिनकी एक परम्परा बराबर एक समान अविच्छिन्न रूप में प्रचलित चली आयी है।[1] सम्प्रदाय अथवा पंथ प्रणयन के विरोधी होते हुए भी सन्तों के सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय तथा पंथ आदि चल पड़े। `घर जोड़ने की माया` में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सन्तों द्वारा प्रवर्तित विभिन्न पन्थों के उद्भव एवं पतन की अत्यन्त सुरुचिपूर्ण व्याख्या की है।[2] इनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि विभिन्न आचार्यों की भाँति इनमें कोई तात्विक भेद नहीं मिलता। दूसरे, इनका सबसे बड़ा आधार प्राय: लोकाचार तथा विचारादि पर निर्भर रहता है। पंथ और सम्प्रदाय में कोई तात्विक भेद ढूँढ़ना कठिन है फिर भी सामान्यत: जिनके अन्तर्गत आचार तथा विचार दोनों प्रकार की पद्धतियों का समावेश हुआ है, उन्हें सम्प्रदाय कहा गया और जिनमें आचार विचार में से किसी एक पद्धति का अनुसरण मिलता है उन्हें पंथ के नाम से अभिहित किया गया। `प्रणालिका` इनसे कुछ भिन्न है। किसी प्रणाली विशेष, विशिष्ट साधना अथवा शैली विशेष का अनुसरण `प्रणालिका` के अन्तर्गत होता है। उदाहरणार्थ अखा ने किसी सम्प्रदाय अथवा पंथ का प्रणयन नहीं किया फिरभी उनके परवर्ती शिष्यों ने उनकी शैली पर ज्ञान चर्चा की है। इस प्रकार के अनुगामी अपने को न सम्प्रदायगत मानते हैं और न पन्थानुयायी ही, बल्कि ये सभी अखा की विशिष्ट प्रणालिका : साधना एवं शैली : के उपासक तथा परिपोषक प्रतीत होते हैं। सारांशत: यह कहा जा सकता है कि प्रणालिका में केवल विचारपक्ष, पन्थ में विशेषतया आचारपक्ष तथा सम्प्रदाय में आचार तथा विचार दोनों का समन्वय होता है।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृ. ७८७।

२. देखिए — अशोक के फूल, पृ. २८ से ३४।

:ब: `सन्त` शब्द की व्याख्या :

सत्य की प्रतीति एवं परम तत्त्व की खोज करने वाला व्यक्ति सामान्यत: जनसमाज में `सन्त` कहा जाता है, किन्तु साहित्य के इतिहास में इस शब्द की विशिष्ट व्याख्या मिलती है । विशिष्ट लक्षणों के अनुसार `सन्त` शब्द का व्यवहार केवल उन आदर्श महापुरुषों के लिए ही किया जा सकता है, जो पूर्णत: आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाज में रहते हुए, नि:स्वार्थ भाव से विश्व कल्याण में प्रवृत्त रहा करते हैं । इसके सिवा यह शब्द अपने रूढ़िगत अर्थ में उन ज्ञानेश्वर आदि निर्गुण भक्तों के लिए भी प्रयुक्त होता आया है, जो दक्षिण के विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रचारक थे और कदाचित अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण उत्तर भारत के कबीर आदि के लिए भी इसका प्रयोग होने लगा है ।[१]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से डॉ.बडथ्वाल ने इसकी संगति पालि भाषा के उस शान्त शब्द से जोड़ी है जिसका अर्थ निवृत्तिमार्गी या विरागी होता है । इसरूप में इन्होंने सन्तों को निर्गुणिया भी कहा है ।[२] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपरोक्ष की उपलब्धि के लिए अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित होने वाले अनुभवी व्यक्ति को सन्त कोटि का कहा है ।[३] मराठी साहित्य में सन्त शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ है । वहाँ `भक्त` एवं `सन्त` के बीच वस्तुत: कोई सीमारेखा नहीं । इसीलिए आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपने अधिनिबन्ध में सन्त शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है- "जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन को साध्य मानकर लोकमंगल की कामना करता है उसे हम सन्त की श्रेणी में रखते हैं"।[४]

---

१. हिन्दी साहित्य कोश पृ.७८७ ।
२. हि.का.नि.स., पृ. ३२ ।
३. उ.भा.स.प., पृ.५ ।
४. हि.म.स.दे., पृ.५६ ।

गुजरात के सन्तों ने भी वस्तुतः अपनी साधना को कहीं भी एकान्तिक नहीं कहा, अपितु अखा तथा नरहरि ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया कि जो भक्ति तथा ज्ञान में भेद उत्पन्न करता है वह जन मूढ है ।[१.] अन्तर केवल इतना है कि एक का आधार भावात्मक है तो दूसरे का बुद्धिपरक, किन्तु अन्त दोनों का एक ही है आत्म प्रतीति ।[३.]ज्ञाननिष्ठ भक्ति इन्हें वर्य है किन्तु शुष्क शुष्कज्ञान की इन्होंने कठोर टीका भी की है । इनका ज्ञान स्वानुभवपूर्ण एवं भावमूलक है। ऐसे सन्तों को बंगाली साहित्य में `मर्मी` और `सन्धानी` आदि शब्दों से अभिहित किया गया है । पाहुड दूहों में `सन्धानी` शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है ।[४.] आचार्य क्षितिमोहन ने जहां इन्हें `अनुभव साच पंथी` कहा है, वहां श्री.उमाशंकर जोशी ने ऐसे सन्तों को `अनुभवसिद्ध` अथवा `अनुभवार्थी` कहा है । डॉ. रानडे ने वारकरी सम्प्रदाय के सन्तों की चर्चा करते हुए इन्हें `सन्त` नाम से जगह जगह अभिहित किया है तथा यह बताया है कि इन सन्तों ने निर्गुण के साथ सगुण की साधना का त्याग किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता ।[५.]

<u>गुजराती सन्तों के आधार पर :</u> गुजरात के सन्तों ने अपने को जगह जगह `ज्ञानी` की संज्ञा से अभिहित किया है । ऐसा ज्ञानी नर जिसे अकल कला के खेल का अद्भुत परिचय है और जिसकी दृष्टि ध्रुव तारे की तरह तत्त्व की खोज में अटल एवं अविचल रहती है ।[६.]

---

१. नरहरिकृत– गोपी– उद्धव-संवाद, ३३ ।
३. डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी, के.गु.पो., पृ.५५ ।
४. पाहुडदूहा, ३८ ब ।
५. मिस्टिसिज्म इन् महाराष्ट्र, प्रो. आर.डी.रानडे । पूना,१९३३:,पृ.४२ ।
६. `अकल कला- खेलत नर ज्ञानी, जैसे हि नाव हिरे फिरे दसौं दिश,
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ।`–परिचित पद संग्रह, पृ.६ ।

अखा ने दस प्रकार के ज्ञानी बताये हैं, शुष्कज्ञानी, हठज्ञानी, ज्ञानदग्ध, वितण्ड, ज्ञानखल, निन्दकज्ञानी, भ्रमज्ञानी, शठज्ञानी, शून्यवादी, और शुद्ध ज्ञानी । `लेकिन उनमें सच्चा ज्ञानी सिर्फ दसवाँ है शेष अज्ञानी हैं क्योंकि शुद्ध ज्ञानी ही अनिर्वचनीय तथा अनुभववेत्ता होता है ।[1] मनोहरस्वामी : सच्चिदानंद : ने भी ज्ञानियों की विविध कोटियाँ शास्त्र एवं व्यवहार के आधार पर सूचित की हैं किन्तु सच्चा ज्ञानी उन्होंने उसे कहा है जो ब्रह्म के रहस्यों को चारों वेदों की भाँति जानता हो ।[2] [illegible] प्रीतमदास ने सन्त को ब्रह्म की लहर कहा है तथा सन्तवाणी को उसकी तरंग ।[3] बापू साहब के कथनानुसार `जो अशान्ति में शान्ति पैदा करे वही सन्त है ।[4] तथा जो `सत्` नाम को समझता है वही ज्ञानी है ।`[5] नरहरि ने ज्ञानगीता में सन्त को `कल्पद्रुम` कहा है । अखा के मतानुसार सन्त वह अनुभवसिद्ध ज्ञानी है जो सगुण निर्गुण का भेद छोड़ भक्ति एवं वैराग्य के पंख लगा लोक मंगल के लिए तत्त्व की खोज में निकल पड़े । सारांशत: जहाँ हिन्दी में `सन्त` शब्द केवल निर्गुण मार्गियों के लिए रूढ़ हो गया है, वहाँ गुजरात में उसका प्रयोग प्राय: व्यापक अर्थ में लिया जाता है ।

:क: <u>`गुजराती सन्त कवि`की व्याख्या :</u>

`सन्त` शब्द की व्याख्या के साथ साथ हम यह स्पष्ट कर लेना भी आवश्यक समझते हैं कि `गुजराती सन्त कवि` किसे कहें ? प्रस्तुत अधिनिबन्ध यद्यपि [illegible] क्षेत्रीय अध्ययन की दृष्टि से लिखा गया है किन्तु यह सर्वमान्य सत्य है कि सन्त कभी किसी क्षेत्र विशेष

---

१. अखाकृत छप्पा : दशविध ज्ञानी को अंग :

२. `ब्रह्म को लहे अभेद, जैसे बोले चारों वेद,
मनोहर सोई सत्यज्ञानी की निशानी है ।` मनहर पद-११ पृ.३८८ ।

३. प्री. वा., पृ.१०३ ।

४. `शान्ति पमाडे तेने तो सन्त कहीए, एना दासना ते दास थइने रहीए ।`
परिचित पद संग्रह, पृ.२५१, पद १५ ।

५. `समजे सत नाम तेने तो कहीए ज्ञानी`।वही, पद १६ ।

अथवा काल विशेष के होकर नहीं रहे । वे तो रमते जोगी थे । अत: उन्हें किसी सीमा में बांधना उतना ही मुश्किल है जितना किसी अगम सागर की गहराई का मापना अथवा आकाश की सीमारेखा खींचना । फिरभी, सुविधा की दृष्टि से इस अधि-निबन्ध में `गुजराती सन्त` उसे कहा गया है —

१. जो जन्म, पितृ परम्परा अथवा गुरु परम्परा से गुजरात से सम्पर्कित हो ।
२. जिसने गुजरात को अपनी साधनाभूमि अथवा प्रचार का क्षेत्र चुना हो ।
३. जो गुजरात की भूमि से सम्पर्कित न होकर भी गुजराती में काव्य रचना करता हो ।

:ड: गुजरात, गुजराती एवं हिन्दी से हमारा तात्पर्य :

गुजरात : दसवीं शताब्दी पूर्व इस प्रदेश का नाम `गुर्जरत्रा`, `गुर्जरत्रा मंडल`, `गुर्जर गुज्जर देश` आदि रूपों में उल्लिखित मिलता है, जिसका सम्बन्ध प्राय: पाँचवीं शती उत्तरार्ध से छट्ठी शती पूर्वार्ध तक भारत में प्रविष्ट होने वाली गुर्जर जाति से है ।[१] दसवीं शती के आसपास भिन्नमाल से पाटण तक का यह भूमिभाग सोलंकी तथा बाघेला राजाओं के अधीन रहा और इसके पश्चात् मुसलमानों के हाथों में आने पर इसका सीमा विस्तार पश्चिम तथा दक्षिण की ओर होता गया ।

गुजरात की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत यद्यपि आबू तथा दमणगंगा का मध्यवर्ती भाग ही समाविष्ट होता है, तथापि उसका भाषाकीय विस्तार अधिक व्यापक है और गुजरात के निम्नलिखित भूमि खण्डों तक विस्तृत है :[२] —

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृ. २६७ ।
२. `गुजरात एण्ड इट्स लिट्रेचर`, पृ.१२ ।

१. उत्तर गुजरात : आबू तथा मही नदी का मध्यवर्ती प्रदेश :

२. दक्षिण गुजरात : मही तथा दमण गंगा का मध्यवर्ती प्रदेश :

३. दमण गंगा का दक्षिण भूभाग : जिसमें सालीसट एवं बम्बई का मिश्रभाषी प्रदेश भी समाविष्ट हो जाता है । :

४. सौराष्ट्र कल्पद्वीप ।

५. कच्छ प्रदेश ।

गुजराती :- उपर्युक्त विस्तृत भूभाग में बोली जाने वाली भाषा का नाम गुजराती है । आज जिसे हम गुजराती भाषा के नाम से अभिहित करते हैं प्राचीनकाल में इसी भाषा को अपभ्रंश, गुर्जर भाषा, अपभ्रंश गिरा, प्राकृत या भाषा कहा जाता था । सत्रहवीं शती में हुए रसिक कवि प्रेमानंद ने : सन् १६४६ से १७१४ ई० : पहले पहल अपने काव्य `दशमस्कन्ध में गुजराती शब्द का प्रयोग अपनी भाषा के लिए किया[१].

`बांधु नागदमण गुजराती भाषा ।`

इसके बाद ई० १७३१ में जर्मनी के मुख्य नगर बर्लिन के एक लायब्रेरियन ला कोफ ने अपने एक लेख में गुजराती भाषा का उल्लेख किया है । इसके बाद तो धीरे धीरे गुजराती शब्द व्यवहार में आने लगा और आज वही एक शब्द इस भाषा के लिए प्रचलित है ।[२] गुजरात के तमाम भागों में बसनेवाले हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई तथा अन्य लोग भी गुजराती भाषा बोलते हैं । भारत के बाहर भी विश्व के अनेक भागों में जहाँ गुजराती जाकर बस गये हैं, यह भाषा बोली जाती हैं । जनगणना के अनुसार वर्तमान समय में भारत के लगभग १ करोड़, ६३ लाख, ११ हजार ६० व्यक्ति गुजराती बोलते हैं ।[३]

---

१. `हिन्दी साहित्य कोश` पृ.२६७ ।
२. वही पृ.२६७ ।
३. `गुजराती साहित्य का इतिहास` श्री. जयन्तकृष्ण दवे, पृ.१ ।

क्षेत्रीय बोलियों में नागरी, चरोतरी, सूरती, सोरठी, पारसी आदि प्रमुख बोलियाँ हैं । इन बोलियों की अनेक उपबोलियाँ भी हैं किन्तु उनके बीच का भेद इतना सूक्ष्म है कि उन्हें यहाँ उधृत करना उचित नहीं ।

हिन्दी : इस अधिनिबन्ध में `हिन्दी` शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है । हिन्दी साहित्य के इतिहासों में भी इस शब्द का प्रयोग किसी एकरूपा भाषा के लिए न होकर एक भाषा परम्परा के लिए ही होता आया है ।[1] गुजराती सन्तों ने गुजराती के अतिरिक्त जिस भाषा को अपनी वाणी का माध्यम बनाया वह ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी के साथ साथ प्रादेशिक प्रभावों से भी अछूती नहीं थी । हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इस प्रकार की मिली जुली सन्त वाणी के लिए `सधुक्कडी` हिन्दी `साधु भाषा` आदि नामों का उल्लेख किया है । अध्ययन की सुविधा के लिए इस प्रकार की सन्त वाणी को इस प्रबन्ध में `हिन्दी` शब्द से अभिहित किया गया है । यह वस्तुत: वही भाषा थी जोकि आज से शताब्दियों पूर्व भारत के सांस्कृतिक केन्द्रों पर बोली और समझी जाती थी तथा अन्तर प्रान्तीय व्यवहार के लिए आन्तर भाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी । इस बात का समर्थन ग्रियर्सन महोदय ने भी किया है ।[2]

:इ: हिन्दी तथा गुजराती की निकटता और पारस्परिक सम्बन्ध :

वस्तुत: गुजराती और ब्रजभाषा दोनों ही भारतीय आर्यकुल की भाषाएँ हैं तथा दोनों का मूल पश्चिम शौरसेनी अपभ्रंश में है ।[3] प्रो. टर्नर तथा ज्यो. ग्रियर्सन ने जिसे शौरसेनी अपभ्रंश कहा है उसे श्री. के.का.शास्त्री ने `आभीर अपभ्रंश` के नाम से अभिहित करना अधिक समीचीन समझा है ।[4] ईसवी सन् की ग्यारहवीं शती तक

१. `हिन्दी साहित्य` आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
२. `गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ` डॉ. अम्बाशंकर नागर । पृ.१ ।
३. `गुजराती फोनोलोजी` प्रो. टर्नर । पृ.२ ।
४. `गुजराती स्वर व्यंजन प्रक्रिया` पृ.२,३ ।

अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी । इसके बाद दो सौ वर्ष तक अपभ्रंश और पुरानी गुजराती का अन्तराल रूप रहा । इस रूप को कुछ लोग अन्तिम अपभ्रंश या गौर्जर अपभ्रंश कहते हैं ।[१] इसके पश्चात जिस भाषा का उद्भव हुआ उसे डॉ. टेसिटरी ने `ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी` श्री. नरसिंहराव दिवेटिया ने `गुर्जर अपभ्रंश` श्री.उमाशंकर जोशी ने `मारु गुर्जर` तथा डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने `मरुभाषा` कहा है ।[२] इस `पुरानी पश्चिमी राजस्थानी` से गुजराती एवं हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता सोलहवीं शती में कायम हुई इस प्रकार का उल्लेख डॉ.सुनीतिकुमार चैटर्जी ने भी किया है ।[३] सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से अर्वाचीन गुजराती के चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं ।[४]

<u>गुजरात में हिन्दी की व्यापकता :</u> मध्ययुग से ही गुजरात में ब्रजभाषा का व्यापक प्रचार रहा । गुजरात के अनेक वैष्णव कवियों तथा सन्तों ने ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली में रचनाएँ की हैं । कच्छ-भुज की ब्रजभाषा पाठशाला अपने समय की सुप्रसिद्ध एवं समृद्ध पाठशाला थी, जहाँ उत्तरभारत से भी लोग पढ़ने के लिए आते थे । हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गोविन्द गिल्लाभाई सौराष्ट्र के शिहोर गाँव के थे । लल्लूलाल गुजराती थे । गुजरात के वेदान्ती कवि अखा और उनके परवर्ती शताधिक ज्ञानी कवियों ने हिन्दी में उच्चकोटि की रचनाएँ की हैं । गुजराती कवि दयाराम की सैकड़ों रचनाएँ हिन्दी में उपलब्ध होती हैं । आज भी गुजरात के नवोदित लेखक और कवि स्वभाषा गुजराती के साथ साथ हिन्दी में भी कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास आदि लिख रहे हैं ।

---

१. `हिन्दी साहित्य कोश` पृ.२६७ ।

२. `राजस्थानी भाषा और साहित्य` डॉ.हीरालाल माहेश्वरी । पृ.४ ।

३. Gujarati must have differenciated from old Western Rajasthani in the Sixteenth Century into a separate language."
-Origin & dev. of the Bengali Language Vol.1. Page 9.

४. `हिन्दी साहित्य कोश` पृ.२६७ ।

हिन्दी के विकास में जिन अहिन्दी क्षेत्रों का प्रमुख हाथ रहा है, गुजरात उनमें से एक है ।

हिन्दी के प्रति गुजराती सन्तों का आकर्षण और उसके कारण :

डॉ. अम्बाशंकर नागर ने गुजरात में हिन्दी की व्यापकता के कारण इस प्रकार गिनाए हैं-"एक तो हिन्दी भाषी प्रदेश का निकटवर्ती प्रदेश होने के कारण, दूसरे वल्लभ सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय, और संत मत के व्यापक प्रभाव के कारण और तीसरे गुजरात के मुसलमान बादशाहों और राजपूत राजाओं के हिन्दी प्रेम के कारण गुजरात के अंचल में हिन्दी को फलने फूलने का पर्याप्त अवसर मिला था ।"[१] जिस प्रकार बंगाल के विद्यापति, पंजाब के नानक, महाराष्ट्र के नामदेव, दक्षिण के पद्मनाभ वंचिपाल आदि भक्त कवियों ने हिन्दी को अपनी वाणी का माध्यम चुना था, ठीक उसी प्रकार गुजरात के भांडण, अखा, धीरा, वस्ता और मनोहर आदि सन्तों द्वारा रचित हिन्दी की उच्चकोटि की रचनाएँ इसका प्रमाण हैं कि इन सन्तों ने हिन्दी के प्रति अपनी सहज ममता ही प्रकट नहीं की, अपितु स्वभाषा की भाँति हिन्दी में साधिकार रचनाएँ भी की हैं । अपनी वाणी के व्यापक प्रसार के हेतु, उत्तर भारत के सन्तों के सम्पर्क एवं प्रभाव के कारण, तीर्थाटन एवं भ्रमणशीलता के नाते तथा लोकरुचि आदि अन्य कारणों से हिन्दी के प्रति इन सन्तों का अभिमुख होना नितान्त स्वाभाविक था । हिन्दीभाषी प्रदेश के निकटवर्ती होने के कारण इन सन्तों के लिए हिन्दी का ज्ञान सुलभ एवं सानुकूल सिद्ध हुआ । अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में लिपि तथा व्याकरण की दृष्टि से गुजराती और हिन्दी के बीच का अन्तर भी अल्प है। इन दोनों भाषाओं की मुख्य प्रवृत्तियों पर हम इस प्रकार दृष्टिपात कर सकते हैं :-

१. देखिए- 'गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ' पृ.१ ।

हिन्दी और गुजराती की मुख्य प्रवृत्तियाँ :

लिपिभेद :

१. हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं की लिपि कुछ शताब्दियों पूर्व देवनागरी ही रही है । कालान्तर में उनमें किंचित परिवर्तन हुआ है । गुजरात की नागर ब्राह्मण जाति अब भी इस लिपि का उपयोग करती है । गुजरात में सामान्य प्रचार की लिपि का नाम है `गुजराती वर्णमाला` अर्थात् जिसे हम शिरोरेखा विहीन देवनागरी का विकसित स्वरूप मान सकते हैं । एक अन्य लिपि `शराफी` अथवा `बोड़िया` है जिसका विशिष्ट प्रयोग व्यापारी वर्ग में पाया जाता है ।

२. गुजराती में पूर्ण विराम की जगह अंग्रेजी की भाँति छोटी बिन्दी :.: रखी जाती है । हिन्दी की भाँति खड़ी पाई :।: का उपयोग नहीं होता । अन्य विराम चिन्ह हिन्दी जैसे ही हैं ।

३. गुजराती में प्रत्यय शब्द के साथ ही लगते हैं । मात्राएँ हिन्दी की तरह लगायी जाती हैं ।

४. गुजराती में प्रयुक्त फारसी अक्षरों के नीचे न बिन्दी लगायी जाती है और न उनका उच्चारण फारसी उच्चारण की तरह होता है । ड और ढ के नीचे भी बिन्दी नहीं लगायी जाती ।

उच्चारण भेद :

१. स्वरों में `ऋ` का उच्चारण `रु` के समकक्ष होता है । मराठी में भी इसी प्रकार, किन्तु प.हिन्दी

में `रि` ।

२. व्यंजनों में `ज्ञ` का उच्चारण `ग्न्य` के अनुरूप होता है ।

३. गुजराती में मूर्धन्य `ण` तथा जिह्वामूलीय `ळ` है । सबव मराठी में भी इसका अधिकांश प्रयोग होता है । राजस्थानी उड़िया तथा पंजाबी में इस ध्वनि का ईषत् प्रयोग मिलता है ।

४. वर्ण उच्चारण गुजराती, प. हिन्दी तथा मराठी में समान है । `अ` का उच्चारण ह्रस्व `अ` ही होता है, छछ बंगला की तरह `ऑ` नहीं ।

५. मराठी तथा गुजराती में तीन लिंग : पुलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक नान्यतर : होते हैं जबकि हिन्दी में मात्र दो लिंगों : पुलिंग और स्त्रीलिंग : का ही प्रचलन है । सामान्यतः नपुंसक लिंग पुलिंग में समाविष्ट हो गया है । प. हिन्दी की कुछ बोलियों तथा डिंगल के प्राचीन ग्रन्थों में तीन लिंग मिलते हैं ।

६. गुजराती में सामान्यतः ओ लगाने से एक वचन का बहुवचन होता है । इसमें दो ही वचन हैं ।

७. खड़ी बोली की एक वचन भूतकालिक क्रिया `था` मराठी में होता, बुन्देलखंडी और गुजराती में `हतो` हो जाती है ।

८. स्वर के पश्चात् संयुक्त व्यंजन को सामान्य बनाकर स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है जैसे —

हिन्दी	गुजराती
मक्खन	माखण

९. 'ह'कार के पहले आने वाले 'अ'कार धारी अरबी-फारसी के शब्द गुजराती में 'ए'कार वाले हो जाते हैं, जबकि हिन्दी में इस प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जाता । उदाहरणार्थ :

शहर	शेहेर अथवा शहेर ।
महर	मेहेर अथवा महेर ।
लहर	लेहेर अथवा लहेर ।

१०. हिन्दी में जहाँ 'ऐ' और 'औ' है वहाँ गुजराती में सिन्धी तथा राजस्थानी के अनुरूप 'ए' तथा 'ओ' है । उदाहरणार्थ :

बैठा	बेठो ।
लौंडी	लोंडी ।

११. हिन्दी में इकारान्त वाले शब्द गुजराती में अकारान्त हो जाते हैं । उदाहरणार्थ :

बिगड़ना	बगडवुं ।
लिखना	लखवुं ।
मिलना	मलवुं ।

१२. हिन्दी में जहाँ 'उ' है, गुजराती में कहीं-कहीं 'अ' है । उदाहरणार्थ :

तुम	तमे ।
मानुस	माणस ।
हुआ	हतो ।

१३. हिन्दी में 'व' का 'ब' हो जाता है और कहीं कहीं दोनों रूप मिलते हैं, जबकि गुजराती में यथावत् है । उदाहरणार्थ :

बनिया	वाणियो ।
बिना	विना ।

१४. हिन्दी की अल्पप्राण ध्वनि गुजराती में महाप्राण और और हिन्दी की महाप्राण ध्वनि गुजराती में अल्पप्राण हो जाती है । यथा :

घबराना गभराववुं ।

१५. ह्रस्व का दीर्घ तथा दीर्घ का ह्रस्व हिन्दी से गुजराती की प्रवृत्ति है । उदाहरणार्थ :

दिवस दीवस, दी
नहीं नहि ।

:ई: काल निर्णय :

गुजरात की ज्ञानाश्रयी शाखा के अंकुर यद्यपि १३ वीं शती से प्रस्फुटित होते हुए दिखायी देते हैं, किन्तु इसका निश्चित स्वरूप हमें १६ वीं शती में मिलता है । इस आधार पर प्रस्तुत निबन्ध के अध्ययन को संवत् १५५० से १८०० तक सीमित रखा गया है, यद्यपि प्रसंगवश प्रस्तावना काल के सन्तों का परिचय देना भी समीचीन समझा गया है । प्रस्तावना काल के सन्तों में अधिकांश का सम्बन्ध यद्यपि महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत से है, किन्तु गुजरात की ज्ञानाश्रयी धारा के उद्भव एवं विकास में उनका योगदान अविस्मरणीय है । अत: उन्हें प्रस्तुत निबन्ध में नींव के पत्थरों की भाँति उपयुक्त समझा गया है । अध्ययन की सुविधा के लिए इस समस्त काल को हम दो युगों में विभक्त कर सकते हैं :-

१. प्रस्तावना काल : सं. १२५० से १५५० :

२. मध्यकाल : सं. १५५० से १८०० :

:अ: पूर्व मध्यकाल :सं. १५५० से १७५० :
:ब: उत्तर मध्यकाल :सं. १७५० से १८०० :

उपर्युक्त काल विभाजन हमने उपलब्ध सामग्री के आधार पर तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी और डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत द्वारा समर्थित उत्तरी भारत की सन्त परम्परा के काल विभाजन के आधार पर किंचित परिवर्तनों सहित निश्चित किया है । सन्-संवतों के उल्लेख भी प्राप्त एवं चर्चित सामग्री के आधार पर ज्यों के त्यों उद्धृत किये गये हैं । सन् को संवत् में परिवर्तित करते समय ५६ वर्ष का अन्तर स्वीकृत किया गया है । संवतों के निर्धारण में एकाध वर्ष की घट-बढ़ के लिए लेखक क्षमाप्रार्थी है ।

प्रथम परिच्छेद

"गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा की पृष्ठभूमि"